ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 223-226**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

प्राचीन भारत का पूर्वी एशिया से व्यापार एवं वाणिज्यिक अनुबंध (प्रारम्भिक काल से 1200 ई. तक)

डॉ0 रंगनाथ द्विवेदी

सहायक प्राध्यापक– प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन, ए0 एन0 एस0 कॉलेज, जहानाबाद (बिहार) भारत

Received-04.08.2026, Revised-12.08.2026, Accepted-19.08.2026, E-mail:rnd93040@gmail.com

सारांशः ***प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास केवल कृषि और स्थानीय बाजारों तक सीमित नहीं था, बल्कि भारतीय व्यापारी प्रारम्भिक काल से ही स्थल तथा समुद्री मार्गों के माध्यम से पश्चिम एशिया, मध्य एशिया और पूर्वी एवं दक्षिण–पूर्वी एशिया से जुड़े हुए थे। विशेष रूप से बंगाल की खाड़ी भारतीय उपमहाद्वीप और दक्षिण–पूर्वी एशिया के बीच व्यापार, संस्कृति तथा जन–संपर्क का प्रमुख माध्यम बनी। ईसा पूर्व के अंतिम शताब्दियों से लेकर 1200 ई. तक भारतीय व्यापारी बर्मा (म्यांमार), मलय प्रायद्वीप, थाईलैंड, सुमात्रा, जावा, कंबोडिया, चम्पा तथा चीन के बंदरगाहों तक पहुँचे। पुरातात्त्विक साक्ष्य, भारतीय एवं दक्षिण–पूर्व एशियाई अभिलेख, चीनी यात्रियों के विवरण, सिक्के, मृद्भांड, मूर्तियाँ तथा मंदिर–सम्बन्धी अवशेष इस विस्तृत वाणिज्यिक संपर्क की पुष्टि करते हैं।***

प्राचीन भारतीय व्यापार में केवल वस्तुओं का आदान–प्रदान ही नहीं होता था, बल्कि व्यापारिक संगठनों, श्रेणियों और व्यापारी संघों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दक्षिण भारत के मणिग्रामम्, अंजुवन्नम्, ऐय्यावोल/ऐन्नूरुवर, नानादेशि तथा नगरम् जैसे संगठन आंतरिक एवं समुद्री व्यापार को संगठित करते थे। इनके नियम, पारस्परिक दायित्व, ऋण, ब्याज, कर, माल की सुरक्षा, व्यापारिक मार्गों और विवाद–निपटारे की व्यवस्थाएँ आधुनिक अर्थ में पूर्ण विकसित 'कमर्शियल कॉन्ट्रैक्ट' तो नहीं थीं, लेकिन वाणिज्यिक अनुबंधों और संस्थागत व्यापार की महत्वपूर्ण पूर्वपीठिका अवश्य थीं। 9वीं से 12वीं शताब्दी के दक्षिण भारतीय और दक्षिण–पूर्व एशियाई अभिलेख व्यापारी संघों की संगठित अंतरराष्ट्रीय गतिविधियों के स्पष्ट प्रमाण देते हैं।

इस लेख का उद्देश्य प्रारम्भिक काल से 1200 ई. तक भारत और पूर्वी/दक्षिण–पूर्वी एशिया के बीच व्यापारिक संबंधों, प्रमुख व्यापारिक वस्तुओं, समुद्री मार्गों, व्यापारी संघों तथा वाणिज्यिक अनुबंधों की प्रकृति का विश्लेषण करना और उनके आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों को रेखांकित करना है।

कुंजीभूत शब्द– प्राचीन भारत, पूर्वी एशिया, दक्षिण–पूर्वी एशिया, बंगाल की खाड़ी, समुद्री व्यापार, मणिग्रामम्, वाणिज्यिक अनुबंध, चोल।

प्रस्तावना– भारत की भौगोलिक स्थिति ने उसे एशिया के विभिन्न क्षेत्रों के बीच व्यापारिक संपर्क का स्वाभाविक केंद्र बनाया। भारतीय उपमहाद्वीप के पूर्वी और दक्षिणी तट बंगाल की खाड़ी तथा हिंद महासागर से जुड़े हुए थे। पश्चिमी तट अरब सागर के माध्यम से पश्चिम एशिया और पूर्वी अफ्रीका से जुड़ता था, जबकि पूर्वी तट से समुद्री मार्ग श्रीलंका, म्यांमार, मलय प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा और आगे चीन तक जाते थे।

भारतीय समुद्री व्यापार का विकास एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी। सिंधु सभ्यता के समय से ही भारत का समुद्री संपर्क मेसोपोटामिया आदि से रहा, परंतु पूर्व की ओर भारत और दक्षिण–पूर्वी एशिया के संबंधों में विशेष विस्तार ईसा पूर्व प्रथम सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध और ईस्वी सन् के प्रारम्भिक शताब्दियों में दिखाई देता है। पुरातात्त्विक अध्ययनों से पता चलता है कि ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में बंगाल की खाड़ी के समुद्री नेटवर्क में मसालों, मनकों तथा अन्य वस्तुओं का लंबी दूरी तक आदान–प्रदान बढ़ा। इस व्यापार के विकास में मानसूनी पवनों का विशेष महत्व था। भारतीय नाविकों ने मानसून की दिशा और समय का ज्ञान प्राप्त कर समुद्री यात्राओं को अपेक्षाकृत नियमित बनाया। समुद्री मार्गों के साथ–साथ बंदरगाहों, व्यापारिक बस्तियों और व्यापारी संघों का विकास हुआ। परिणामस्वरूप व्यापार केवल व्यक्तिगत साहसिक यात्राओं पर निर्भर न रहकर धीरे–धीरे संस्थागत रूप ग्रहण करने लगा।

भारत और पूर्वी एशिया के प्रारम्भिक व्यापारिक संपर्क– भारत के पूर्वी देशों से संबंधों की प्रारम्भिक प्रकृति को समझने के लिए बंगाल की खाड़ी को एक 'समुद्री संपर्क क्षेत्र' के रूप में देखना आवश्यक है। गंगा–ब्रह्मपुत्र घाटी, कलिंग, आंध्र और तमिल तट से निकलने वाले व्यापारी समुद्र पार करके म्यांमार तथा मलय क्षेत्र तक पहुँचते थे। प्रारम्भिक चरण में भारत से दक्षिण–पूर्वी एशिया को जाने वाली प्रमुख वस्तुओं में वस्त्र, मनके, धातु की वस्तुएँ, आभूषण, मसाले तथा धार्मिक–सांस्कृतिक सामग्री शामिल थीं। दक्षिण–पूर्वी एशिया से सुगंधित लकड़ी, कपूर, मसाले, रत्न, टिन, सोना तथा अन्य वन एवं समुद्री उत्पाद भारत आते थे। ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में बंगाल की खाड़ी का व्यापारिक नेटवर्क अधिक सघन हुआ। पुरातात्त्विक प्रमाण बताते हैं कि मसाला–व्यापार और मनकों का व्यापार भारत तथा दक्षिण–पूर्वी एशिया के बीच व्यापक समुद्री नेटवर्क से जुड़ गया था। इस संपर्क को केवल व्यापारिक दृष्टि से देखना पर्याप्त नहीं होगा। व्यापारी अपने साथ भाषा, लिपि, धार्मिक विचार, स्थापत्य परंपरा और सामाजिक संस्थाओं को भी ले गए। फलतः भारतीय आर्थिक संपर्क के साथ सांस्कृतिक संपर्क भी विकसित हुआ।

प्रमुख समुद्री मार्ग और बंदरगाह– भारत और पूर्वी एशिया के व्यापार में पूर्वी तथा दक्षिणी भारत के बंदरगाहों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। बंगाल की खाड़ी को पार करने वाले मार्गों में बंगाल, कलिंग, आंध्र और तमिल तट के बंदरगाह प्रमुख थे। दक्षिण भारत में कावेरीपट्टिनम्, नागपट्टिनम्, मामल्लपुरम्, कोरकई और अन्य तटीय केंद्र समुद्री व्यापार के महत्वपूर्ण केंद्र रहे। केरल तट के बंदरगाह भी भारतीय महासागरीय व्यापार में महत्वपूर्ण थे। व्यापारी श्रीलंका होते हुए दक्षिण–पूर्वी एशिया पहुँचते थे। श्रीलंका स्वयं भारत और दक्षिण–पूर्वी एशिया के बीच एक महत्वपूर्ण मध्यवर्ती केंद्र था। इसके बाद समुद्री मार्ग मलय प्रायद्वीप और मलक्का जलडमरूमध्य तक पहुँचते थे। यहाँ से जहाज सुमात्रा, जावा तथा आगे दक्षिण चीन सागर की ओर बढ़ते थे। इस पूरे क्षेत्र में श्रीविजय जैसे समुद्री राज्य का विशेष महत्व था। सुमात्रा और मलय क्षेत्र में स्थित इसके बंदरगाहों ने भारत और चीन के बीच व्यापार में मध्यस्थ की भूमिका निभाई। 7वीं शताब्दी में चीनी बौद्ध यात्री यी–चिंग ने श्रीविजय क्षेत्र की समृद्धि तथा भारत और चीन से जुड़े समुद्री संपर्कों का उल्लेख किया।

प्रमुख व्यापारिक वस्तुएँ– भारत और पूर्वी एशिया के व्यापार में अनेक प्रकार की वस्तुओं का आदान–प्रदान होता था।

भारत से निर्यात– 1. सूती एवं रेशमी वस्त्र, 2. मसालें, 3. काली मिर्च, 4. सुगंधित पदार्थ, 5. मनकें एवं आभूषण, 6. हाथीदाँत और हाथीदाँत की वस्तुएँ,7. धातु एवं धातु निर्मित वस्तुएँ, 8. नील एवं रंग, 9. औषधीय एवं वनस्पति उत्पाद, 10. धार्मिक एवं कलात्मक वस्तुएँ और विशेष रूप से दक्षिण भारतीय वस्त्रों की प्रतिष्ठा व्यापक थी। बाद के काल में तमिल व्यापारी समुद्री व्यापार में वस्त्रों के महत्वपूर्ण निर्यातक बने।

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

दक्षिण–पूर्वी एशिया से भारत आने वाली वस्तुएँ– दक्षिण–पूर्वी एशिया से कपूर, चंदन–सदृश सुगंधित लकड़ियाँ, मसाले, रत्न, सोना, टिन तथा विभिन्न वन–उत्पाद भारत पहुँचते थे। इस व्यापार में सुमात्रा, मलय प्रायद्वीप और जावा का विशेष महत्व था। चीन से रेशम, चीनी मिट्टी के पात्र और उच्च गुणवत्ता की विलासिता की वस्तुएँ आती थीं। भारतीय व्यापारी इन वस्तुओं को दक्षिण एशिया के बाजारों में पहुँचाते थे।

व्यापारिक संगठनों का विकास– प्राचीन भारत में व्यापार को संगठित करने के लिए श्रेणी, निगम, गण और व्यापारी संघों जैसी संस्थाएँ विकसित हुईं। दक्षिण भारत में इनका विकास विशेष रूप से महत्वपूर्ण था। व्यापारी संघों ने व्यापारियों को सामूहिक सुरक्षा, व्यापारिक जानकारी, पूँजी, परिवहन और विवाद समाधान जैसी सुविधाएँ प्रदान कीं। वे स्थानीय राजनीतिक शक्तियों से समझौते कर व्यापारिक विशेषाधिकार भी प्राप्त करते थे।

दक्षिण भारत के प्रमुख व्यापारी संघों में: मणिग्रामम्, अंजुवन्नम्, ऐय्यावोल/ऐन्नूरुवर, नानादेशि, नगरम्, वलंजियार विशेष उल्लेखनीय हैं। मणिग्रामम् की गतिविधियों के प्रमाण दक्षिण भारत से लेकर दक्षिण–पूर्वी एशिया तक प्राप्त हुए हैं। 9वीं शताब्दी के थाईलैंड के तकुआपा अभिलेख में मणिग्रामम् से संबंधित तमिल व्यापारी उपस्थिति का प्रमाण मिलता है।

मणिग्रामम् और अंतरराष्ट्रीय व्यापार– मणिग्रामम् दक्षिण भारत का एक महत्वपूर्ण व्यापारी संगठन था। इसके सदस्य स्थल और समुद्री दोनों प्रकार के व्यापार में भाग लेते थे। प्रारम्भिक प्रमाणों से इसकी गतिविधियाँ दक्षिण भारत में दिखाई देती हैं और बाद में इसका विस्तार समुद्री व्यापार तक हुआ। तकुआपा, थाईलैंड के अभिलेख का विशेष महत्व है। इससे पता चलता है कि तमिल व्यापारी दक्षिण–पूर्वी एशिया में केवल अस्थायी यात्री के रूप में नहीं जाते थे, बल्कि वहाँ स्थायी अथवा अर्द्ध–स्थायी व्यापारिक समुदाय भी बनाते थे। 9वीं शताब्दी के इस अभिलेख के साथ भारतीय मूल की मूर्तिकला और धार्मिक अवशेष भी मिले हैं। मणिग्रामम् के सदस्य स्थानीय शासकों और समुदायों के साथ समझौते करते थे। व्यापारिक वस्तुओं की सुरक्षा, मार्गों की रक्षा तथा स्थानीय करों के भुगतान जैसी व्यवस्थाएँ व्यापार को स्थायित्व प्रदान करती थीं।

ऐय्यावोल/ऐन्नूरुवर की भूमिका– दक्षिण भारतीय व्यापारिक इतिहास में ऐय्यावोल के पाँच सौ (।लंअवसम थ्पअम भ्नदकतमक/ ।पददनततनअंत) का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। यह संगठन केवल किसी एक नगर तक सीमित नहीं था, बल्कि समय के साथ इसके व्यापारिक नेटवर्क ने दक्षिण भारत, श्रीलंका तथा दक्षिण–पूर्वी एशिया तक विस्तार किया। इस संगठन के व्यापारी स्थल और समुद्री दोनों प्रकार के व्यापार में सक्रिय थे। इनके अभिलेखों में विभिन्न व्यापारिक समुदायों और उनके संगठित स्वरूप के प्रमाण मिलते हैं। 1088 ई. का सुमात्रा के लोबु टोआ/बारुस का तमिल अभिलेख विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इसमें ऐन्नूरुवर से जुड़े व्यापारियों की उपस्थिति का प्रमाण मिलता है। बारुस उस समय एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र था जहाँ दक्षिण भारत, दक्षिण–पूर्वी एशिया और पश्चिम एशिया के व्यापारी आते थे। यह तथ्य प्रमाणित करता है कि 11वीं शताब्दी तक भारतीय व्यापारी नेटवर्क मलक्का जलडमरूमध्य से आगे सुमात्रा तक मजबूत हो चुका था।

अंजुवन्नम् और अंतरराष्ट्रीय व्यापारी– अंजुवन्नम् का संबंध मुख्यतः समुद्री व्यापार से था। इसमें पश्चिम एशिया से आए यहूदी, ईसाई, मुस्लिम और अन्य विदेशी व्यापारी शामिल होते थे। दक्षिण भारत के बंदरगाहों में भारतीय और विदेशी व्यापारियों के बीच सहयोग का यह एक महत्वपूर्ण माध्यम था। अंजुवन्नम् का उल्लेख दक्षिण भारतीय अभिलेखों में मिलता है और इसका संबंध भारतीय महासागर के व्यापक व्यापारिक नेटवर्क से था। कुछ स्रोत इसे अरब और फारसी व्यापारियों से जोड़ते हैं। इस प्रकार दक्षिण भारत केवल भारतीय व्यापारियों का केंद्र नहीं था, बल्कि यहाँ पश्चिम एशिया और दक्षिण–पूर्वी एशिया के व्यापारी भी सक्रिय थे। यह बहु–जातीय और बहु–धार्मिक व्यापारिक वातावरण अंतरराष्ट्रीय व्यापार के विकास के लिए अत्यंत अनुकूल था।

वाणिज्यिक अनुबंधों की प्रकृति– 'वाणिज्यिक अनुबंध' शब्द को प्राचीन भारतीय संदर्भ में आधुनिक कानूनी अनुबंध के समान नहीं समझना चाहिए। उस समय व्यापारिक समझौते प्रायः धर्मशास्त्रीय नियमों, श्रेणी–परंपराओं, स्थानीय प्रथाओं, राजा की आज्ञाओं, अभिलेखीय दानपत्रों और व्यापारी संघों के सामूहिक नियमों पर आधारित होते थे। इन अनुबंधों के प्रमुख तत्व निम्नलिखित थे:

(क) व्यापारिक दायित्व: व्यापारी को निर्धारित वस्तु, मात्रा और मूल्य के संबंध में अपने दायित्व का पालन करना पड़ता था। व्यापारिक संघ अपने सदस्यों के आचरण को नियंत्रित करते थे।

(ख) ऋण एवं ब्याज: व्यापार के लिए पूँजी की आवश्यकता होती थी। व्यापारी और धनदाता के बीच ऋण संबंध विकसित हुए। दक्षिण–पूर्वी एशिया से प्राप्त बाद के अभिलेखों में ब्याज और वाणिज्यिक लेन–देन से संबंधित नियमों के संकेत मिलते हैं।

(ग) कर एवं चुंगी: राज्य समुद्री व्यापार से सीमा शुल्क, बंदरगाह शुल्क और अन्य कर प्राप्त करते थे। व्यापारिक संघों के माध्यम से करों की वसूली और भुगतान अधिक व्यवस्थित हुआ।

(घ) माल की सुरक्षा: लंबी समुद्री यात्राओं में समुद्री डकैती, प्राकृतिक आपदा और राजनीतिक संघर्ष का जोखिम रहता था। इसलिए व्यापारी संघ सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था करते थे। कुछ व्यापारी संगठनों के साथ सशस्त्र सुरक्षा बलों के होने के प्रमाण भी मिलते हैं। तकुआपा के संदर्भ में व्यापारिक बस्ती और उसके जल–स्रोत की सुरक्षा के लिए सशस्त्र संरक्षण का संकेत मिलता है।

(ङ) विवाद समाधान: व्यापारी संघ स्वयं अपने सदस्यों के बीच विवादों को हल करने की क्षमता रखते थे। 'समय' या सामूहिक नियमों की अवधारणा से यह संकेत मिलता है कि व्यापारिक संस्थाओं के अपने नियम और दायित्व थे।

अभिलेखों में वाणिज्यिक समझौतों के प्रमाण– प्राचीन और प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत में व्यापारिक अनुबंधों को समझने के लिए अभिलेख अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत हैं। दक्षिण भारत के शिलालेख और ताम्रपत्र व्यापारिक समुदायों, उनके अधिकारों तथा दायित्वों का उल्लेख करते हैं। केरल के तेरिसापल्ली ताम्रपत्र में मणिग्रामम् से जुड़े व्यापारियों का उल्लेख मिलता है। ऐसे दस्तावेज केवल धार्मिक दान के प्रमाण नहीं थे, बल्कि उनमें व्यापारियों को दिए गए अधिकार और सामाजिक–आर्थिक विशेषाधिकार भी परिलक्षित होते हैं। 9वीं से 13वीं शताब्दी के बीच दक्षिण भारत, श्रीलंका और दक्षिण–पूर्वी एशिया में प्राप्त व्यापारी संघों के अभिलेखों से इन संगठनों के अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क का पता चलता है। इससे स्पष्ट है कि व्यापारिक संबंध व्यक्तिगत स्तर से आगे बढ़कर संस्थागत रूप ग्रहण कर चुके थे।

चोल राज्य और समुद्री व्यापार– 10वीं से 12वीं शताब्दी में चोल राज्य के उत्कर्ष ने भारत और दक्षिण–पूर्वी एशिया के व्यापार को विशेष गति दी। चोल शासकों ने दक्षिण भारत के समुद्री तटों तथा बंदरगाहों को नियंत्रित किया और समुद्री शक्ति का विकास किया। राजराज चोल प्रथम और विशेष रूप से राजेंद्र चोल प्रथम के समय समुद्री संपर्कों का विस्तार हुआ। 1025 ई. के आसपास राजेंद्र चोल के श्रीविजय क्षेत्र के विरुद्ध नौसैनिक अभियान का उल्लेख मिलता है। इसे केवल सैन्य विजय के रूप में देखना

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

पर्याप्त नहीं है; यह समुद्री व्यापारिक मार्गों और सामरिक केंद्रों के महत्व को भी प्रदर्शित करता है। चोल काल में व्यापारिक संघों और राज्य के बीच पारस्परिक संबंध थे। राज्य को व्यापार से राजस्व प्राप्त होता था और व्यापारी समुदाय को राजनीतिक संरक्षण एवं सुरक्षा। इस प्रकार व्यापार और राज्य–सत्ता के बीच पारस्परिक निर्भरता विकसित हुई।

श्रीविजय और भारत– श्रीविजय साम्राज्य सुमात्रा तथा मलय क्षेत्र में स्थित एक शक्तिशाली समुद्री शक्ति था। इसके नियंत्रण में ऐसे क्षेत्र थे जो भारत और चीन के बीच समुद्री संपर्क में महत्वपूर्ण थे। भारत के व्यापारी श्रीविजय के बंदरगाहों पर जाते थे और वहाँ से चीन की ओर यात्रा करते थे। चीनी स्रोतों में दक्षिण–पूर्वी एशियाई बंदरगाहों के व्यापारिक महत्व का विस्तृत उल्लेख मिलता है। 7वीं शताब्दी के यी–चिंग के विवरण से पालेंबांग क्षेत्र की आर्थिक एवं धार्मिक स्थिति का ज्ञान होता है। इस प्रकार भारत–श्रीविजय संबंध केवल राजनीतिक नहीं बल्कि व्यापारिक और सांस्कृतिक भी थे।

भारत–चीन व्यापार– भारत और चीन के बीच व्यापार का एक महत्वपूर्ण माध्यम दक्षिण–पूर्वी एशिया था। भारतीय व्यापारी चीन तक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों मार्गों से पहुँचते थे। चीन से आने वाली प्रमुख वस्तुओं में रेशम, चीनी मिट्टी के पात्र और विलासिता की वस्तुएँ थीं। भारत से वस्त्र, मसाले, औषधीय एवं सुगंधित पदार्थ तथा अन्य वस्तुएँ चीन जाती थीं। चीनी स्रोत भारतीय महासागरीय व्यापार के अध्ययन में महत्वपूर्ण हैं। 1225 ई. का ैन थ्द ैप भारतीय उपमहाद्वीप और दक्षिण–पूर्वी एशिया के संदर्भ में थोड़ा बाद का स्रोत है, इसलिए 1200 ई. की सीमा के लिए इसका उपयोग मुख्यतः व्यापारिक नेटवर्क की निरंतरता समझने हेतु किया जाना चाहिए। इसमें दक्षिण–पूर्वी एशिया के विभिन्न बंदरगाहों, वस्तुओं, मुद्राओं और व्यापारिक प्रथाओं का वर्णन है। 12वीं शताब्दी तक दक्षिण भारतीय व्यापारियों की चीन के प्रमुख बंदरगाहों तक उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं। क्वानझोउ में भारतीय मूल के व्यापारिक समुदाय और धार्मिक स्थापत्य के प्रमाण इस समुद्री नेटवर्क की गहराई को दर्शाते हैं।

व्यापार और सांस्कृतिक प्रसार– भारत और दक्षिण–पूर्वी एशिया के बीच व्यापार ने संस्कृति के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। व्यापारी अपने साथ केवल वस्तुएँ नहीं बल्कि भाषा, लिपि, धार्मिक विश्वास और सामाजिक संस्थाएँ भी ले गए। तमिल तथा संस्कृत अभिलेखों की उपस्थिति दक्षिण–पूर्वी एशिया में भारतीय व्यापारिक समुदायों के स्थायी प्रभाव को दर्शाती है। मंदिरों, मूर्तियों और भारतीय शैली की स्थापत्य परंपराओं का प्रसार भी व्यापारिक संपर्कों के साथ जुड़ा था। व्यापारियों द्वारा मंदिरों को दान देना और धार्मिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता देना सामान्य प्रक्रिया थी। इससे व्यापारिक समुदायों को स्थानीय समाज में सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इस प्रकार व्यापार आर्थिक गतिविधि होने के साथ–साथ सांस्कृतिक संपर्क का माध्यम भी बना।

व्यापारिक नेटवर्क का राजनीतिक प्रभाव– समुद्री व्यापार ने भारतीय राज्यों की राजनीतिक प्राथमिकताओं को भी प्रभावित किया। बंदरगाहों पर नियंत्रण और समुद्री मार्गों की सुरक्षा राज्य की शक्ति के महत्वपूर्ण तत्व बन गए। चोलों की दक्षिण–पूर्वी एशिया में नौसैनिक गतिविधियों को इसी संदर्भ में समझा जा सकता है। व्यापारिक हितों की रक्षा, समुद्री मार्गों पर प्रभाव और श्रीविजय जैसे मध्यवर्ती समुद्री राज्य के साथ संबंधों ने दक्षिण भारतीय राजनीति को अंतरराष्ट्रीय आयाम दिया। व्यापारी संघ भी आर्थिक रूप से शक्तिशाली हो गए। उन्होंने मंदिरों, सार्वजनिक निर्माणों और स्थानीय संस्थाओं को दान दिया तथा कुछ परिस्थितियों में शासकों को ऋण भी दिया। इस कारण राज्य और व्यापारी वर्ग के बीच सहयोग की स्थिति उत्पन्न हुई।

व्यापार के सामाजिक प्रभाव– समुद्री व्यापार से एक समृद्ध व्यापारी वर्ग का विकास हुआ। नगरों और बंदरगाहों की जनसंख्या बढ़ी तथा शिल्पकार, नाविक, परिवहनकर्ता, साहूकार और व्यापारी एक–दूसरे से जुड़े। व्यापारिक नगर बहु–जातीय एवं बहु–धार्मिक केंद्र बने। दक्षिण भारतीय बंदरगाहों में भारतीयों के साथ अरब, फारसी, यहूदी और ईसाई व्यापारी भी उपस्थित थे। इस प्रक्रिया से सामाजिक गतिशीलता बढ़ी। व्यापारिक संगठन जातीय एवं क्षेत्रीय सीमाओं से आगे जाकर आर्थिक हितों के आधार पर संगठित होने लगे।

व्यापार और विधिक व्यवस्था– व्यापार की सफलता के लिए केवल बाजार और परिवहन पर्याप्त नहीं थे। विश्वास, अनुबंध, ऋण, भुगतान, माल की गुणवत्ता तथा विवाद समाधान के नियम आवश्यक थे। प्राचीन भारतीय व्यापारिक व्यवस्था में यह कार्य कई संस्थाओं द्वारा किया जाता थाः

1. राजा एवं राज्य अधिकारी,
2. स्थानीय सभा,
3. व्यापारी संघ
4. श्रेणी,
5. नगरम्,
6. धार्मिक संस्थाएँ
7. स्थानीय customary law.

व्यापारी संघों के अपने नियम थे और सदस्य उनसे बँधे होते थे। इस प्रकार सामूहिक उत्तरदायित्व ने अंतरराष्ट्रीय व्यापार में विश्वास का वातावरण तैयार किया। दक्षिण भारत के अभिलेखों में व्यापारी संघों के संगठनात्मक नियम और गतिविधियाँ जिस प्रकार दर्ज हैं, उनसे पता चलता है कि ये संस्थाएँ केवल व्यापारियों के अनौपचारिक समूह नहीं थीं, बल्कि पर्याप्त संस्थागत शक्ति रखती थीं।

व्यापार के आर्थिक प्रभाव– भारत और पूर्वी एशिया के व्यापार का भारतीय अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

पहला प्रभावः राजस्व में वृद्धि, राज्यों को बंदरगाह शुल्क, सीमा शुल्क तथा व्यापारिक करों से आय प्राप्त हुई।

दूसरा प्रभावः नगरीकरण, बंदरगाहों और व्यापारिक मार्गों के आसपास नगरों का विकास हुआ।

तीसरा प्रभावः शिल्प उत्पादन, विदेशी बाजारों की माँग ने वस्त्र, धातु, आभूषण, मनके और अन्य हस्तशिल्पों के उत्पादन को प्रोत्साहित किया।

चौथा प्रभावः मुद्रा और वित्त, दीर्घ दूरी के व्यापार ने ऋण, ब्याज और भुगतान की विकसित प्रणालियों को प्रोत्साहित किया।

पाँचवाँ प्रभावः व्यापारी वर्ग की शक्ति, अंतरराष्ट्रीय व्यापार से संपन्न व्यापारी वर्ग का राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव बढ़ा।

व्यापार की सीमाएँ और चुनौतियाँ– इतना व्यापक व्यापार अनेक जोखिमों से भी घिरा हुआ था। समुद्री तूफान, समुद्री डकैती, जहाजों की क्षति, युद्ध, राजनीतिक अस्थिरता और बंदरगाहों पर करों का परिवर्तन व्यापारियों के लिए बड़ी चुनौतियाँ थीं। इसी कारण व्यापारी संघों ने सामूहिक सुरक्षा तथा राजनीतिक संरक्षण को महत्व दिया। कुछ संघों के साथ सशस्त्र संरक्षक होने के प्रमाण यह दिखाते हैं कि व्यापारिक संपत्ति की सुरक्षा के लिए निजी सुरक्षा व्यवस्था भी विकसित हुई थी। राजनीतिक संघर्ष कभी–कभी व्यापारिक मार्गों को प्रभावित करते थे, किंतु व्यापारी नेटवर्क की बहु–केंद्रीय प्रकृति के कारण व्यापार पूर्णतः समाप्त नहीं होता था।

1200 ई. तक व्यापारिक व्यवस्था का समग्र स्वरूप– 1200 ई. तक भारत और पूर्वी/दक्षिण–पूर्वी एशिया के बीच व्यापार एक विकसित और बहुस्तरीय नेटवर्क बन चुका था। इसमें निम्न तत्व शामिल थेः

भारत → श्रीलंका → मलय प्रायद्वीप → सुमात्रा/जावा → चीन

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- III, Issues-41, YEAR- July-Sept. 2026

इस नेटवर्क के साथ अनेक वैकल्पिक मार्ग भी जुड़े थे। दक्षिण भारत के व्यापारी संघों ने इस नेटवर्क में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 9वीं से 12वीं शताब्दी के बीच दक्षिण भारत, श्रीलंका और दक्षिण–पूर्वी एशिया में व्यापारी संघों से संबंधित अभिलेखों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। उपलब्ध अध्ययनों में 10वीं से 12वीं शताब्दी को इन नेटवर्कों के विस्तार का महत्वपूर्ण चरण माना गया है। बारुस, तकुआपा और अन्य स्थानों से प्राप्त तमिल अभिलेख यह सिद्ध करते हैं कि भारतीय व्यापारी दक्षिण–पूर्वी एशिया में संगठित समुदायों के रूप में सक्रिय थे।

प्रभाव– भारत और पूर्वी एशिया के बीच व्यापार का प्रभाव केवल अर्थव्यवस्था तक सीमित नहीं रहा।

आर्थिक प्रभाव: बंदरगाहों, नगरों, शिल्प और व्यापारिक संस्थाओं का विकास हुआ।

राजनीतिक प्रभाव: समुद्री शक्ति का महत्व बढ़ा और चोल जैसे राज्यों ने समुद्री गतिविधियों को राज्य नीति का हिस्सा बनाया।

सामाजिक प्रभाव: व्यापारी एवं शिल्पकार वर्ग की शक्ति बढ़ी और बंदरगाह नगर बहु–सांस्कृतिक केंद्र बने।

सांस्कृतिक प्रभाव: भारतीय धर्म, कला, स्थापत्य, लिपि और भाषायी प्रभाव दक्षिण–पूर्वी एशिया तक पहुँचा।

विधिक प्रभाव: व्यापारिक संघों के नियम, ऋण, ब्याज, कर, दायित्व तथा विवाद–निपटारे की परंपराओं ने वाणिज्यिक कानून की प्रारम्भिक संस्थागत नींव को मजबूत किया।

अंतरराष्ट्रीय प्रभाव: भारतीय व्यापारी हिंद महासागर और दक्षिण चीन सागर के बीच एक महत्वपूर्ण संपर्क कड़ी बने।

निष्कर्ष– प्रारम्भिक काल से 1200 ई. तक भारत और पूर्वी/दक्षिण–पूर्वी एशिया के संबंधों का इतिहास आर्थिक संपर्क, समुद्री साहस, संस्थागत संगठन और सांस्कृतिक आदान–प्रदान का इतिहास है। बंगाल की खाड़ी ने भारत को म्यांमार, मलय प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा और आगे चीन से जोड़ने वाले एक महत्वपूर्ण समुद्री क्षेत्र के रूप में कार्य किया। इस व्यापार में दक्षिण भारत की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण रही। मणिग्रामम्, अंजुवन्नम्, ऐय्यावोल/ऐन्नूरुवर और अन्य व्यापारी संघों ने व्यापार को संगठित किया। उनके नेटवर्क राजनीतिक सीमाओं से आगे तक फैले हुए थे। तकुआपा, बारुस तथा दक्षिण–पूर्वी एशिया के अन्य स्थलों से प्राप्त तमिल अभिलेख इस बात के ठोस प्रमाण हैं कि भारतीय व्यापारी वहाँ संगठित रूप से कार्य करते थे। वाणिज्यिक अनुबंधों की दृष्टि से इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि व्यापारिक संबंध केवल व्यक्तिगत विश्वास पर आधारित नहीं थे। श्रेणियों और व्यापारी संघों के अपने नियम, दायित्व और सामूहिक अनुशासन थे। ऋण, ब्याज, कर, माल की सुरक्षा, व्यापारिक अधिकार तथा विवाद–समाधान से संबंधित व्यवस्थाएँ धीरे–धीरे विकसित हुईं। यद्यपि इन्हें आधुनिक अर्थ में लिखित 'कमर्शियल कॉन्ट्रैक्ट लॉ' कहना उचित नहीं होगा, फिर भी ये संस्थाएँ वाणिज्यिक विधि और व्यापारिक अनुबंध की ऐतिहासिक पूर्वपीठिका थीं। चोल काल में समुद्री शक्ति और व्यापारिक संगठनों के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ। श्रीविजय क्षेत्र और मलक्का जलडमरूमध्य के व्यापारिक महत्व ने भारतीय राज्यों की विदेश और समुद्री नीति को प्रभावित किया। भारत और चीन के बीच व्यापार भी दक्षिण–पूर्वी एशियाई मध्यवर्ती बंदरगाहों के माध्यम से अधिक संगठित हुआ।

अतः 1200 ई. तक भारतीय समुद्री व्यापार एक व्यापक अंतर–क्षेत्रीय आर्थिक प्रणाली का रूप ले चुका था। इस प्रणाली में व्यापारी, राज्य, बंदरगाह, समुद्री मार्ग, व्यापारी संघ, धार्मिक संस्थाएँ और स्थानीय बाजार परस्पर जुड़े हुए थे। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय व्यापार का इतिहास केवल वस्तुओं के आदान–प्रदान का इतिहास नहीं, बल्कि व्यापारिक संस्थाओं, अनुबंधीय संबंधों, समुद्री शक्ति, सांस्कृतिक संपर्क और एशियाई आर्थिक एकीकरण के क्रमिक विकास का इतिहास है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Abraham, Meera- Two Medieval Merchant Guilds of South India, Manohar Publications, New Delhi, 1988.
2. Singh, Upinder- A History of Ancient and Early Medieval India: From the Stone Age to the 12th Century, Pearson/Longman.
3. Karashima, Noboru- Ancient and Medieval Commercial Activities in the Indian Ocean: Testimony of Inscriptions and Ceramic&Sherds, Taisho University, Tokyo, 2002.
4. Karashima, Noboru (ed.)- Nagapattinam to Suvarnadwipa: Reflections on the Chola Naval Expeditions to Southeast Asia, Institute of Southeast Asian Studies.
5. Hall, Kenneth R.- Trade and Statecraft in the Age of the Cholas, Abhinav Publications, New Delhi.
6. Hall, Kenneth R.- A History of Early Southeast Asia: Maritime Trade and Societal Development, 100–1500.
7. Subbarayalu, Y.- South India under the Cholas, Oxford University Press.
8. Stri, K. A. Nilakanta- The Cholas, University of Madras.
9. Sstri, K. A. Nilakanta- A History of South India: From Prehistoric Times to the Fall of Vijayanagar, Oxford University Press.
10. Ray, Himanshu Prabha- The Archaeology of Seafaring in Ancient South Asia, Cambridge University Press.
11. Ray, Himanshu Prabha- Monastery and Guild: Commerce under the Satavahanas, Oxford University Press.
12. Pande, B. N.- Society and Culture in Medieval. India.

*****